

Chapter छियासी

अर्जुन द्वारा सुभद्रा-हरण तथा कृष्ण द्वारा अपने भक्तों को आशीर्वाद दिया जाना

इस अध्याय में यह वर्णन हुआ है कि अर्जुन ने किस तरह सुभद्रा का हरण किया और किस तरह भगवान् कृष्ण बहुलाश्व तथा श्रुतदेव नामक भक्तों को आशीर्वाद देने मिथिला गये।

जब राजा परीक्षित ने अपनी दादी सुभद्रादेवी के विवाह के विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की, तो शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया, “अर्जुन ने अपनी तीर्थयात्रा के दौरान यह सुना कि बलदेव अपनी बहन सुभद्रा का पाणिग्रहण दुर्योधन से करना चाहते हैं। सुभद्रा को हरण करके उसके साथ स्वयं विवाह करने की इच्छा से अर्जुन ने एक संन्यासी का वेश बनाया और द्वारका गये। उनका वेश ऐसा प्रभावशाली था कि न तो बलराम, न ही द्वारका का कोई अन्य वासी उन्हें पहचान पाया, प्रत्युत उन सबों ने एक वैष्णव संन्यासी के योग्य उन्हें आदर दिया। इस तरह वर्षा ऋतु के चार मास बीत गये। एक दिन अर्जुन को बलराम के घर पर भोजन करने का निमंत्रण मिला। वहाँ उन्होंने सुभद्रा को देखा और वे तुरन्त ही उसे प्राप्त करने की इच्छा से अभिभूत हो गये। सुभद्रा भी अर्जुन को पति रूप में पाने के लिये इच्छा करने लगी, अतएव उसने लजाई हुई दृष्टि से उन्हें देखा। कुछ दिन बाद सुभद्रा रथ-उत्सव में भाग लेने महल से बाहर आई। इस अवसर का लाभ उठाकर, अर्जुन सुभद्रा को हर ले गये और जिन यादवों ने उन्हें रोकना चाहा, उन्हें परास्त कर दिया। यह सुन कर पहले तो बलराम अत्यधिक क्रुद्ध हुए, किन्तु जब कृष्ण तथा अन्य परिवार वालों ने उन्हें शान्त कराया, तो वे प्रसन्न हो उठे और वर तथा वधू को पर्याप्त दहेज के साथ विदा किया।”

श्रुतदेव नामक एक ब्राह्मण श्रीकृष्ण का भक्त था, जो मिथिला नगरी में रहता था। दैववश वह अपने तथा अपने परिवार के पेट-पालन भर के लिए ही कमा पाता था। फिर भी वह सदैव तुष्ट रहता

था और अपना सारा समय धार्मिक कार्यों में बिताता था। राजा बहुलाश्व एक दूसरा भागवत था, जो मिथिला में ही रहता था। वह राजा जनक का वंशज था और पूरे विदेह पर शासन करता था, फिर भी वह श्रुतदेव की ही तरह भौतिक सम्पत्ति से विरक्त रहता था। इन दोनों महात्माओं की भक्ति-प्रवृत्ति से प्रसन्न होकर, भगवान् कृष्ण इन्हें मिलने के लिए रथ पर चढ़ कर मिथिला गये। अपने साथ वे नारद तथा अन्य कई विद्वान ऋषियों को भी लेते गये। मिथिलावासियों ने भगवान् तथा उनकी सन्त टोली का बड़े हर्ष से स्वागत किया। वे कृष्ण के लिए विविध भेंटें लेकर आये और उन्होंने उन्हें तथा सन्तों को नमस्कार किया।

बहुलाश्व तथा श्रुतदेव दोनों ने आगे बढ़कर श्रीकृष्ण से आदरपूर्वक अनुरोध किया कि वे उनके घरों में पधारें। उन दोनों को तुष्ट करने के लिए भगवान् ने अपना विस्तार किया और एक ही समय उन दोनों के घरों में पहुँचे। उनमें से हर एक ने उनकी समुचित पूजा की, उनकी स्तुति की, उनके पाँव पखारे और इस पाद-प्रक्षालित जल को अपने तथा अपने परिवार वालों के ऊपर छिड़का। तब भगवान् कृष्ण ने अपने साथ आये ऋषियों की प्रशंसा की और सामान्य रूप से सभी ब्राह्मणों की महिमा कह सुनाई। उन्होंने अपने आतिथेयों को भी भक्ति-विषयक उपदेश दिया। इन उपदेशों को समझते हुए श्रुतदेव तथा बहुलाश्व दोनों ने ही ऋषियों तथा भगवान् श्रीकृष्ण को एकचित्त-भक्ति से आदर दिया। इसके बाद कृष्ण द्वारका लौट गये।

श्रीराजोवाच

ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारां रामकृष्णयोः ।

यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (परीक्षित) ने कहा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (शुकदेव); वेदितुम्—जानना; इच्छामः—चाहते हैं; स्वसारम्—बहन को; राम-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण की; यथा—कैसे; उपयेमे—विवाह किया; विजयः—अर्जुन; या—जो; मम—मेरी; आसीत्—थी; पितामही—दादी।

राजा परीक्षित ने कहा : हे ब्राह्मण, हम जानना चाहेंगे कि किस तरह अर्जुन ने बलराम तथा कृष्ण की बहन से विवाह किया, जो मेरी दादी थीं।

तात्पर्य : अब परीक्षित महाराज भगवान् की बहन सुभद्रा के विवाह की कथा की ओर ध्यान ले जाते हैं। श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार यहाँ पर राजा परीक्षित का प्रश्न पिछली कथा से निकलता है,

क्योंकि अर्जुन द्वारा सुभद्रा के साथ पाणिग्रहण करना उतनी ही कठिन करामात थी, जितनी कि कृष्ण द्वारा देवकी के पुत्रों को मृत्युलोक से वापस ले आना, क्योंकि अर्जुन के साथ सुभद्रा के विवाह का स्वयं बलराम विरोध कर रहे थे।

श्रीशुक उवाच

अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ।

गतः प्रभासमश्रृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥

दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ।

तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अर्जुनः—अर्जुन; तीर्थ—पवित्र स्थानों की; यात्रायाम्—यात्रा करते समय; पर्यटन्—भ्रमण करते हुए; अवनीम्—पृथ्वी; प्रभुः—स्वामी; गतः—गये हुए; प्रभासम्—प्रभास को; अश्रृणोत्—सुना; मातुलेयीम्—मामा की कन्या; सः—उसने; आत्मनः—अपने; दुर्योधनाय—दुर्योधन को; रामः—बलराम; ताम्—उसको; दास्यति—देना चाहता है; इति—इस प्रकार; न—नहीं; च—तथा; अपरे—अन्य कोई; तत्—उसके; लिप्सुः—प्राप्त करने की इच्छुक; सः—वह, अर्जुन; यतिः—संन्यासी; भूत्वा—बन कर; त्रि-दण्डी—दण्ड धारण किये; द्वारकाम्—द्वारका; अगात्—गया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : दूर दूर तक यात्रा करते हुए और विविध तीर्थस्थानों का दर्शन करके अर्जुन प्रभास आये। वहाँ उन्होंने सुना कि बलराम अपने मामा की लड़की का विवाह दुर्योधन के साथ करना चाहते हैं और कोई भी उनकी इस योजना का समर्थन नहीं करता। अर्जुन स्वयं उसके साथ विवाह करना चाहते थे, अतः उन्होंने त्रिदंड से सज्जित होकर संन्यासी का वेश बना लिया और द्वारका गये।

तात्पर्य : भले ही सुभद्रा को पत्नी रूप में पाने की अर्जुन की योजना प्रथा के विरुद्ध प्रतीत हुई हो, किन्तु वे प्रोत्साहनवश ही ऐसा करने जा रहे थे। दरअसल भगवान् कृष्ण ही उनके मुख्य सह-षडयंत्रकर्ता थे। द्वारका में राजवंश के अधिकांश सदस्य, विशेष रूप से वसुदेव अपनी प्यारी पुत्री दुर्योधन को देने के प्रस्ताव के कारण दुखी थे।

तत्र वै वार्षितान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः ।

पौरैः सभाजितोऽभीक्षणं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; वै—निस्सन्देह; वार्षिकान्—वर्षाऋतु के; मासान्—मासों; अवात्सीत्—रहता रहा; स्व—अपने; अर्थ—प्रयोजन; साधकः—प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए; पौरैः—नगर के लोगों के द्वारा; सभाजितः—सम्मानित; अभीक्षणम्—निरन्तर; रामेण—बलराम द्वारा; अज्ञानता—अनभिज्ञ; च—तथा; सः—वह।

अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए, वे वर्षाऋतु-भर वहीं रहते रहे। बलराम तथा नगर के अन्य वासियों ने उन्हें न पहचानते हुए, उनका सभी तरह से सम्मान तथा सत्कार किया।

एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् ।

श्रद्धयोपहतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; गृहम्—अपने (बलराम के) घर पर; आनीय—लाकर; आतिथ्येन—अतिथि के रूप में; निमन्त्र्य—निमंत्रित करके; तम्—उस (अर्जुन) को; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; उपहतम्—भेंट किया; भैक्ष्यम्—भोजन; बलेन—बलराम द्वारा; बुभुजे—खाया; किल—निस्सन्देह।

एक दिन बलराम, उन्हें अपने घर आमंत्रित अतिथि के रूप में ले आये और अर्जुन ने बलराम द्वारा आदरपूर्वक अर्पित भोजन ग्रहण किया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा प्रस्तुत व्याख्या से यह पता चलता है कि संन्यासी की भूमिका में अर्जुन ने वर्षाऋतु के चातुर्मास व्रत को पूरा किया और उसके बाद अब वे गृहस्थों के सामान्य आमंत्रण फिर स्वीकार कर सकते थे। अतएव उस समय बलराम के घर जाने के पीछे असामान्य मन्तव्य के प्रति किसी को शंका नहीं हुई।

सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ।

प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; अपश्यत्—देखा; तत्र—वहाँ; महतीम्—अद्भुत; कन्याम्—लड़की को; वीर—वीरों को; मनः—हराम्—मुग्ध करते हुए; प्रीति—सुखपूर्वक; उत्फुल्ल—प्रफुल्लित; ईक्षणः—उसकी आँखें; तस्याम्—उस पर; भाव—भाव द्वारा; क्षुब्धम्—विचलित; मनः—मन; दधे—रखा, लगाया।

वहाँ उन्होंने अद्भुत कुमारी सुभद्रा को देखा, जो वीरों को मोहने वाली थी। उनकी आँखें हर्ष से खुली की खुली रह गई, उनका मन विचलित हो उठा और उसी के विचारों में लीन हो गया।

सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् ।

हसन्ती व्रीडितापङ्गी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सा—वह; अपि—भी; तम्—उसको; चकमे—चाहने लगी; वीक्ष्य—देखकर; नारीणाम्—स्त्रियों के; हृदयम्-गमम्—हृदयों को चुराने वाली; हसन्ती—हँसती हुई; व्रीडिता—लज्जा से युक्त; अपाङ्गी—तिरछी दृष्टि डालती; तत्—उस पर; न्यस्त—स्थिर; हृदय—हृदय; ईक्षणा—तथा आँखें।

अर्जुन स्त्रियों के लिए अतीव आकर्षक थे, अतः ज्योंही सुभद्रा ने उन्हें देखा, वे उन्हें पति रूप में पाने की इच्छा करने लगीं। लजीली हँसी से तथा तिरछी चितवनों से उसने अपना हृदय तथा अपनी आँखें उन्हीं पर गड़ा दीं।

तात्पर्य : देखते ही सुभद्रा जान गई कि अर्जुन कोई संन्यासी नहीं अपितु उसके होने वाले प्रियतम हैं। भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद इसका विस्तार से वर्णन करते हैं, “महाराज परीक्षित के पितामह अर्जुन स्वयं असाधारण रूप से सुन्दर थे और उनका शारीरिक गठन सुभद्रा के लिए अत्यन्त आकर्षक था। सुभद्रा ने भी मन ही मन निश्चय कर लिया कि वह केवल अर्जुन को ही अपने पति रूप में स्वीकार करेगी। सामान्य लड़की की तरह वह अर्जुन को देखकर बड़े हर्ष से मुसकरा रही थी।”

तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः ।

न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस पर; परम्—एकमात्र; समनुध्यायन्—ध्यान करती; अन्तरम्—उचित अवसर; प्रेप्सुः—प्राप्त करने की प्रतीक्षा हुए; अर्जुनः—अर्जुन; न लेभे—अनुभव नहीं कर सका; शम्—शान्ति; भ्रमत्—विचलित; चित्तः—हृदय; कामेन—काम द्वारा; अति-बलीयसा—अत्यन्त प्रबल।

उसी का ध्यान करते तथा उसे उठा ले जाने के अवसर की प्रतीक्षा करते हुए अर्जुन को चैन नहीं मिल पा रहा था। उनका हृदय कामेच्छा से धकधका रहा था।

तात्पर्य : बलराम द्वारा सम्मानित किये जाने पर भी अर्जुन उनके शिष्ट आतिथ्य की सराहना नहीं कर सका, क्योंकि वह अत्यधिक विचलित था। अर्जुन का विचलित होना तथा बलराम द्वारा वेश बदले अर्जुन को न पहचाना जाना—ये दोनों भगवान् द्वारा अपनी दिव्य लीलाओं का आनन्द लेने की योजनाएँ थीं।

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गतां ।

जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

महत्याम्—महत्त्वपूर्ण; देव—भगवान् के लिए; यात्रायाम्—उत्सव के मध्य; रथ—रथ पर; स्थाम्—आरूढ़; दुर्ग—किले से; निर्गताम्—बाहर आई हुई; जहार—उसे पकड़ लिया; अनुमतः—अनुमति से; पित्रोः—अपने माता-पिता की; कृष्णस्य—कृष्ण की; च—तथा; महा-रथः—अन्य बलशाली रथी योद्धा ।

एक बार भगवान् के सम्मान में विशाल मन्दिर-उत्सव के अवसर पर, सुभद्रा रथ पर आरूढ़ होकर दुर्ग जैसे महल से बाहर आई। उस समय महारथी अर्जुन को उसका हरण करने का अवसर प्राप्त हुआ। सुभद्रा के माता-पिता तथा कृष्ण ने इसकी स्वीकृति दे दी थी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इस उत्सव को भगवान् विष्णु की वार्षिक रथ-यात्रा मानते हैं, जब भगवान् चातुर्मास्य की समाप्ति पर योगनिद्रा से उठते हैं। सुभद्रा के माता-पिता वसुदेव तथा देवकी हैं।

रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुन्धतो भटान् ।

विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥ १० ॥

शब्दार्थ

रथ—रथ पर; स्थः—खड़े; धनुः—अपना धनुष; आदाय—लेकर; शूरान्—वीरों को; च—तथा; अरुन्धतः—उसे रोकने का प्रयत्न करते हुए; भटान्—तथा रक्षकों को; विद्राव्य—भगाकर; क्रोशताम्—क्रोध से चिल्लाते; स्वानाम्—उसके सम्बन्धियों के; स्व—अपना; भागम्—उचित अंश; मृग-राट्—पशुओं का राजा, सिंह; इव—सदृश ।

अपने रथ पर खड़े होकर अर्जुन ने अपना धनुष धारण किया और उन बहादुर योद्धाओं तथा महल के रक्षकों को मार भगाया, जो उसका रास्ता रोकना चाह रहे थे। जब सुभद्रा के सम्बन्धी क्रोध से शोर मचाने लगे, तो उसने सुभद्रा को उसी तरह उठा लिया, जिस तरह सिंह छोटे-छोटे पशुओं के बीच से अपना शिकार ले जाता है।

तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ।

गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चानुसान्त्वितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तत्—यह; श्रुत्वा—सुनकर; क्षुभितः—विचलित; रामः—बलराम; पर्वणि—मास की सन्धि आने पर; इव—मानो; महा-अर्णवः—सागर; गृहीत—पकड़ने पर; पादः—पाँव; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; सुहृद्भिः—अपने पारिवारिक सदस्यों द्वारा; च—तथा; अनुसान्त्वितः—सावधानी से सान्त्वना दिये गये।

जब बलराम ने सुभद्रा के अपहरण के विषय में सुना, तो वे उसी तरह विचलित हो उठे, जिस तरह पूर्णिमा के अवसर पर सागर क्षुब्ध होता है। किन्तु भगवान् कृष्ण ने अपने परिवार के अन्य सदस्यों सहित आदरपूर्वक उनके पैर पकड़ लिये और सारा मामला समझाकर उन्हें शान्त किया।

प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ।
महाधनोपस्करेभरथाश्चनरयोषितः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

प्राहिणोत्—भेजा; पारिबर्हाणि—दहेज के रूप में; वर-वध्वोः—दूल्हे तथा दुलहिन के लिए; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; बलः—बलराम ने; महा-धन—अत्यन्त मूल्यवान्; उपस्कर—भेंटें; इभ—हाथी; रथ—रथ; अस्व—घोड़े; नर—पुरुष; योषितः—तथा स्त्रियाँ।

तब बलराम ने खुशी खुशी वर-वधू के पास अत्यन्त मूल्यवान् दहेज की वस्तुएँ भेजीं, जिनमें हाथी, रथ, घोड़े तथा दास और दासियाँ सम्मिलित थे।

श्रीशुक उवाच

कृष्णस्यासीद् द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः ।
कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तः कविरलम्पतः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव ने कहा; कृष्णस्य—भगवान् कृष्ण का; आसीत्—था; द्विज—ब्राह्मणों में; श्रेष्ठः—उत्तम; श्रुतदेवः—श्रुतदेव; इति—इस प्रकार; श्रुतः—प्रसिद्ध; कृष्ण—कृष्ण को; एक—एकमात्र; भक्त्या—भक्ति द्वारा; पूर्ण—पूर्ण; अर्थः—इच्छा के समस्त लक्ष्यों में; शान्तः—शान्त; कविः—विद्वान् तथा विवेकशील; अलम्पतः—इन्द्रिय-तृप्ति के लिए अनिच्छुक।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : श्रुतदेव नामक कृष्ण का एक भक्त था, जो उच्च कोटि का ब्राह्मण था। भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्ति करने से पूर्णतया तुष्ट होने के कारण, वह शान्त एवं विद्वान् था तथा इन्द्रिय-तृप्ति से सर्वथा मुक्त था।

स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ।
अनीहयागताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; उवास—रहता था; विदेहेषु—विदेह के राज्य में; मिथिलायाम्—मिथिला नामक नगरी में; गृह-आश्रमी—गृहस्थ के रूप में; अनीहया—बिना प्रयास के; आगत—उसके पास आया; आहार्य—भोजन तथा अन्य उदर-पोषण के साधनों द्वारा; निर्वर्तित—पूरा करता था; निज—अपने; क्रियः—करणीय कार्य।

विदेह के राज्य में मिथिला नामक नगरी में धार्मिक गृहस्थ के रूप में रहते हुए, वह अपने कर्तव्यों को पूरा करता था और जो कुछ उसे आसानी से मिल जाता था, उसी से अपना निर्वाह करता था।

यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवातुपनमत्युत ।

नाधिकं तावता तुष्टः क्रिया चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यात्रा-मात्रम्—मात्र उदर-भरण; तु—तथा; अहः—दिन प्रतिदिन; दैवात्—अपने भाग्य से; उपनमति—उसको मिल जाता था; उत—निस्सन्देह; न अधिकम्—अधिक नहीं; तावता—उसी से; तुष्टः—सन्तुष्ट; क्रियाः—कर्तव्य; चक्रे—वह करता था; यथा—जैसा; उचिताः—उपयुक्त।

विधाता की इच्छा से उसे प्रतिदिन अपने उदर-भरण के लिए उतना मिल जाता, जितने की उसे आवश्यकता होती—उससे अधिक नहीं। इतने से ही तुष्ट हुआ, वह अपने धार्मिक कार्यों को उचित रीति से सम्पन्न करता था।

तात्पर्य : एक आदर्श वैष्णव ब्राह्मण को पारिवारिक जीवन के बन्धनों से बोझिल होते हुए भी अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए उतना ही कठिन श्रम करना चाहिए, जितना कि आवश्यक हो। भौतिक उन्नति के लिए व्यर्थ ही क्षुब्ध हुए बिना उसे अपने समय तथा सम्पत्ति के सर्वश्रेष्ठ भाग को भगवान् की सेवा में उच्चतर कार्यों में लगाना चाहिए। यदि इस पतित युग की अनिवार्य परेशानियों के बावजूद कोई गृहस्थ इस कार्यक्रम में सफल होता है, तो वह भगवान् कृष्ण का निजी सान्निध्य प्राप्त करने की आशा कर सकता है, जैसाकि मिथिला के सिद्ध ब्राह्मण श्रुतदेव के प्रसंग में देखा जायेगा।

तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्च इति श्रुतः ।

मैथिलो निरहम्मान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तथा—भी (कृष्ण-भक्त); तत्—उस; राष्ट्र—राज्य का; पालः—शासक; अङ्ग—हे प्रिय (परीक्षित); बहुलाश्चः इति श्रुतः—बहुलाश्च नाम से विख्यात; मैथिलः—राजा मिथिल (जनक) के राजवंश के; निरहम्-मानः—मिथ्या अहंकार से रहित; उभौ—दोनों; अपि—निस्सन्देह; अच्युत-प्रियौ—भगवान् अच्युत को प्रिय।

हे परीक्षित, इसी तरह से उस राज्य का मिथिलवंशी शासक, जिसका नाम बहुलाश्च था, मिथ्या अहंकार से रहित था। ये दोनों ही भक्त भगवान् अच्युत को अत्यन्त प्रिय थे।

तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् ।

आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों से; प्रसन्नः—प्रसन्न; भगवान्—भगवान्; दारुकेण—दारुक द्वारा; आहृतम्—लाये गये; रथम्—अपने रथ पर; आरुह्य—चढ़ कर; साकम्—साथ; मुनिभिः—मुनियों के; विदेहान्—विदेह राज्य में; प्रययौ—गये; प्रभुः—स्वामी।

इन दोनों से प्रसन्न होकर, दारुक द्वारा लाये गये अपने रथ पर चढ़ कर, भगवान् ने मुनियों की टोली समेत विदेह की यात्रा की।

तात्पर्य : इस श्लोक की टीका करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि श्रुतदेव तथा बहुलाश्व दोनों ही कृष्ण का दर्शन करने के लिए द्वारका जाने में असमर्थ थे, क्योंकि दोनों ने अपने घर पर अपने निजी अर्चाविग्रह की नियमित पूजा करने का व्रत ले रखा था। श्रीकृष्ण इन दोनों को दर्शन देने के लिए अपने नियम का अपवाद करने में परम प्रसन्न थे और जब वे द्वारका से चलने लगे, तो उन्होंने मुनियों से कहा कि जो लोग उनके साथ चलना चाहें वे उनके रथ पर सवार हो सकते हैं, अन्यथा पैदल चलने से वे थक जायेंगे। विख्यात मुनि सामान्यतया ऐसे ऐश्वर्यशाली वाहन में यात्रा करने की बात को सोच भी नहीं सकते, किन्तु भगवान् का आदेश पाने पर उन्होंने अपनी स्वाभाविक अरुचि छोड़ दी और उनके साथ रथ पर हो लिए।

नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ।

अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

नारदः वामदेवः अत्रिः—नारद, वामदेव तथा अत्रि मुनि; कृष्णः—कृष्णद्वैपायन व्यास; रामः—परशुराम; असितः अरुणिः—असित तथा अरुणि; अहम्—मैं (शुकदेव); बृहस्पतिः कण्वः—बृहस्पति तथा कण्व; मैत्रेयः—मैत्रेय; च्यवन—च्यवन; आदयः—इत्यादि।

इन मुनियों में नारद, वामदेव, अत्रि, कृष्णद्वैपायन व्यास, परशुराम, असित, अरुणि, स्वयं मैं, बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय तथा च्यवन सम्मिलित थे।

तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप ।

उपतस्थुः सार्घ्यहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्र तत्र—प्रत्येक स्थान में; तम्—उसको; आयान्तम्—आया हुआ; पौराः—नगर निवासी; जानपदाः—तथा ग्रामवासी; नृप—हे राजा (परीक्षित); उपतस्थुः—स्वागत करने आये; स—सहित; सार्घ्य—आदरसूचक जल की भेंट; हस्ताः—अपने हाथों में; ग्रहैः—ग्रहों से; सूर्यम्—सूर्य; इव—सदृश; उदितम्—उदित।

हे राजन्, भगवान् जिस जिस नगर तथा ग्राम से होकर गुजरे, वहाँ के निवासी अपने अपने हाथों में अर्घ्य की भेंट लेकर उनकी पूजा करने हेतु आगे आये, मानो वे ग्रहों से घिरे हुए सूर्य की पूजा करने आये हों।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण के साथ रथ पर यात्रा कर रहे मुनियों की उपमा सूर्य के चारों ओर के ग्रहों से दी गई है।

आनर्तधन्वकुरुजाङ्गलकङ्कमत्स्य-
पाञ्चालकुन्तिमधुकेकयकोशलार्णाः ।
अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहास-
स्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिखर्नार्यः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

आनर्त—आनर्त (वह प्रदेश जिसमें द्वारका स्थित है) के लोग; धन्व—मरुथल (गुजरात या राजस्थान का); कुरु-जाङ्गल—कुरु जंगलों का प्रदेश (जिसमें थानेश्वर तथा कुरुक्षेत्र के जिले आते हैं); कङ्क—कंक; मत्स्य—मत्स्य (जयपुर तथा अलवर के राज्य); पाञ्चाल—गंगा नदी के दोनों किनारों वाले जिले; कुन्ति—मालव; मधु—मथुरा; केकय—उत्तर पूर्व पंजाब में, शतद्रु तथा विपाशा नदियों के बीच का प्रदेश; कोशल—भगवान् रामचन्द्र का प्राचीन राज्य जो काशी के उत्तरी छोर से हिमालय तक विस्तृत था; अर्णाः—तथा पूर्व में मिथिला से लगा राज्य; अन्ये—अन्य; च—भी; तत्—उसके; मुख—मुँह; सरोजम्—कमल को; उदार—उदार; हास—हँसी से युक्त; स्निग्ध—तथा स्नेहिल; ईक्षणम्—चितवन; नृप—हे राजा; पपुः—पिया; दृशिभिः—अपनी आँखों से; नृ-नार्यः—पुरुषों तथा स्त्रियों ने।

आनर्त, धन्व, कुरु-जांगल, कंक, मत्स्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोशल, अर्ण तथा अन्य कई राज्यों के पुरुषों तथा स्त्रियों ने भगवान् कृष्ण के कमल सदृश मुख की अमृतमयी सुन्दरता का अपने नेत्रों से पान किया, जो उदार हँसी तथा स्नेहिल चितवन से सुशोभित था।

तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः
क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ।
शृण्वन्दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभञ्चं
गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तेभ्यः—उनको; स्व—अपनी; वीक्षण—चितवन से; विनष्ट—नष्ट किया हुआ; तमिस्र—अँधेरा; दृग्भ्यः—जिसकी आँखों का; क्षेमम्—निर्भीकता; त्रि—तीनों; लोक—जगतों के; गुरुः—गुरु; अर्थ—दृशम्—आध्यात्मिक दृष्टि; च—तथा; यच्छन्—प्रदान करते हुए; शृण्वन्—सुनते हुए; दिक्—दिशाओं के; अन्त—छोर; धवलम्—शुद्ध करने वाले; स्व—अपना; यशः—यश; अशुभ—अशुभ; घ्नम्—विनष्ट करने वाले; गीतम्—गाये हुए; सुरैः—देवताओं द्वारा; नृभिः—तथा मनुष्यों द्वारा; अगात्—आये; शनकैः—धीरे धीरे; विदेहान्—विदेह के राज्य में।

तीनों लोकों के गुरु भगवान् कृष्ण ने उन सबों पर, जो उनको देखने आये थे, मात्र अपनी दृष्टि डालते हुए, उन्हें भौतिकतावाद के अंधकार से उबार लिया। इस तरह उन्हें निर्भीकता तथा दिव्य दृष्टि देते हुए भगवान् ने देवताओं तथा मनुष्यों को उन्हीं का यश गाते सुना, जो सारे ब्रह्माण्ड को शुद्ध करने वाला है और सारे दुर्भाग्य को विनष्ट करता है। धीरे धीरे वे विदेह पहुँच गये।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी यह तार्किक प्रश्न उठाते हैं कि रास्ते के किनारे खड़े सामान्य पुरुषों ने भला भगवान् को कैसे देखा होगा क्योंकि उनकी आँखें अज्ञान से आच्छादित तो थी हीं और भगवान्

का रथ हवा से बढ़कर तेज गति से जा रहा था? इसका उत्तर प्रस्तुत करते हुए श्रील जीव गोस्वामी इंगित करते हैं कि कृष्ण की विशेष कृपादृष्टि से उन्हें वह आध्यात्मिक पवित्रता मिल सकी, जो कृष्ण की संगति पाने के लिए आवश्यक होती है। अन्यथा, वे उनकी दृष्टि से ओझल रह जाते, जैसाकि उन्होंने उद्धव को दिये गये अपने उपदेशों में कहा है : *भक्त्याहमेकया ग्राह्यः*—मुझे केवल भक्ति से अनुभव किया जा सकता है (*भागवत ११.१४.२१*)। समास बनाने की *एक-शेष* विधि के अनुसार *स्व-वीक्षण-विनष्ट-तमिस्र-दृग्भ्यः* यद्यपि मूल अर्थ में पुल्लिंग संज्ञा है, किन्तु इससे पुरुषों तथा स्त्रियों दोनों का बोध हो सकता है।

तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ।
अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; प्राप्तम्—आया हुआ; आकर्ण्य—सुन कर; पौराः—नगरवासी; जानपदाः—तथा ग्रामवासी; नृप—हे राजा; अभीयुः—आगे आये; मुदिताः—प्रसन्न मुख; तस्मै—उसको; गृहीत—पकड़े हुए; अर्हण—उन्हें अर्पित करने के लिए भेंटें; पाणयः—अपने हाथों में।

हे राजा, यह सुनकर कि भगवान् अच्युत आ चुके हैं, विदेह के नगर तथा ग्रामनिवासी हर्षपूर्वक अपने अपने हाथों में भेंटें लेकर, उनका स्वागत करने आये।

दृष्ट्वा त उत्तमःश्लोकं प्रीत्युत्फुलाननाशयाः ।
कैर्धृताञ्जलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वास्तथा मुनीन् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देख कर; ते—वे; उत्तमः—श्लोकम्—उत्तम श्लोकों से प्रशंसित भगवान् कृष्ण को; प्रीति—प्रेमपूर्वक; उत्फुल्ल—प्रफुल्लित; आनन—उनके मुखड़े; आशयाः—तथा उनके हृदय; कैः—अपने सिरों पर; धृत—धारण किये; अञ्जलिभिः—अंजुलियों से; नेमुः—प्रणाम किया; श्रुत—सुना गया; पूर्वान्—पहले; तथा—भी; मुनीन्—मुनियों को।

ज्योंही लोगों ने उत्तमश्लोक भगवान् को देखा, उनके मुखड़े तथा हृदय स्नेह से प्रफुल्लित हो उठे। अपने सिरों के ऊपर अंजुली बाँध कर, उन्होंने भगवान् को तथा उनके साथ आये मुनियों को प्रणाम किया, जिनके विषय में उन्होंने पहले केवल सुन रखा था।

स्वानुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ।
मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

स्त—अपने को; अनुग्रहाय—अनुग्रह करने के लिए; सम्प्राप्तम्—अब; मन्वानौ—दोनों सोचते हुए; तम्—उस; जगत्—ब्रह्माण्ड के; गुरुम्—गुरु को; मैथिलः—मिथिला का राजा; श्रुतदेवः—श्रुतदेव; च—तथा; पादयोः—चरणों पर; पेततुः—गिर पड़े; प्रभोः—प्रभु के।

मिथिला का राजा तथा श्रुतदेव दोनों ही प्रभु के चरणों पर गिर पड़े और उनमें से हर एक यही सोच रहा था कि ब्रह्माण्ड के गुरु उन पर अनुग्रह करने आये हैं।

न्यमन्त्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः ।

मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहताञ्जली ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

न्यमन्त्रयेताम्—दोनों ने निमंत्रित किया; दाशार्हम्—दशार्ह वंशज कृष्ण को; आतिथ्येन—अपना अतिथि बनने के लिए; सह—साथ; द्विजैः—ब्राह्मणों के; मैथिलः—बहुलाश्व; श्रुतदेवः—श्रुतदेव; च—तथा; युगपत्—एकसाथ; संहत—दृढ़ता से पकड़े हुए; अञ्जली—दोनों हथेलियाँ।

एक ही समय पर मैथिलराज तथा श्रुतदेव हाथ जोड़े हुए आगे आये और दशार्हों के स्वामी को ब्राह्मण मुनियों समेत अपने अतिथि बनने के लिए आमंत्रित किया।

भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ।

उभयोराविशद्गोहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् ने; तत्—इसे; अभिप्रेत्य—स्वीकार करके; द्वयोः—उन दोनों के; प्रिय—अच्छा लगने वाला; चिकीर्षया—करने की इच्छा से; उभयोः—दोनों के; आविशत्—प्रवेश किया; गोहम्—घरों में; उभाभ्याम्—दोनों; तत्—उस (दूसरे के घर में प्रवेश करने) में; अलक्षितः—अनदेखा।

दोनों ही को प्रसन्न करने की इच्छा से भगवान् ने दोनों का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। इस तरह एक ही समय वे दोनों के घरों में गये और उनमें से कोई भी उन्हें दूसरे के घर में प्रवेश करते नहीं देख सका।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार कृष्ण एक ही समय दो रूपों में प्रकट होकर मुनियों के साथ श्रुतदेव तथा बहुलाश्व के यहाँ गये। इस तरह बहुलाश्व ने सोचा कि भगवान् कृष्ण केवल उसी के घर आये हैं और श्रुतदेव को निराश घर लौटा दिया है, जबकि श्रुतदेव ने इसके ठीक विपरीत सोचा। श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद कहते हैं, “यद्यपि ब्राह्मण तथा राजा यह सोच रहे थे कि भगवान् केवल उसके ही घर पर उपस्थित हैं, किन्तु भगवान् तथा उनके संगी दोनों ही घरों में उपस्थित थे। यह भगवान् का एक अन्य ऐश्वर्य है। शास्त्रों में इस ऐश्वर्य का वर्णन वैभव प्रकाश के रूप में किया जाता है। इसी तरह जब भगवान् कृष्ण ने सोलह हजार रानियों से विवाह किया था तब उन्होंने सोलह हजार

रूपों में अपना विस्तार (प्रकाश) किया था और उनमें से प्रत्येक स्वयं उनके ही समान शक्तिशाली था। इसी तरह, जब ब्रह्मा ने वृन्दावन में कृष्ण की गौवों, बछड़े तथा ग्वालबालों को चुरा लिया था, तब श्रीकृष्ण ने अनेक नवीन गौवों, बछड़ों तथा ग्वालबालों के रूप में अपना विस्तार किया था।”

श्रान्तानप्यथ तान्दूराजनकः स्वगृहागतान् ।
 आनीतेष्व्वासनाछयेषु सुखासीनान्महामनाः ॥ २७ ॥
 प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्त्राविलेक्षणः ।
 नत्वा तदङ्घ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥ २८ ॥
 सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना पूजयां चक्र ईश्वरान् ।
 गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घ्यगोवृषैः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्रान्तान्—थके हुए; अपि—निस्सन्देह; अथ—तब; तान्—उन्हें; दूरात्—दूर से; जनकः—जनक का वंशज, राजा बहुलाश्व;
 स्व—अपने; गृह—घर; आगतान्—आये हुए; आनीतेषु—जो लाये गये; आसन—आसनों पर; अछयेषु—उत्तम; सुख—
 सुखपूर्वक; आसीनान्—बैठे हुए; महा-मनाः—अत्यन्त बुद्धिमान; प्रवृद्ध—गहन; भक्त्या—भक्ति के साथ; उत्-धर्ष—
 आह्लादित; हृदय—हृदय वाले; अस्त्र—आँसुओं से; आविल—धूमिल; ईक्षणः—आँखों वाले; नत्वा—नमन करके; तत्—
 उनके; अङ्घ्रीन्—पाँवों को; प्रक्षाल्य—धोकर; तत्—उस; अपः—जल से; लोक—सारे जगत को; पावनीः—शुद्ध करने में
 समर्थ; स—सहित; कुटुम्बः—अपने परिवार; वहन्—लेकर; मूर्ध्ना—अपने सिर पर; पूजयाम् चक्रे—पूजा की; ईश्वरान्—ईश्वरों
 की; गन्ध—सुगन्धित (चन्दन के) लेप से; माल्य—फूल की मालाओं; अम्बर—वस्त्र; आकल्प—आभूषण; धूप—अगुरु;
 दीप—दीपक; अर्घ्य—अर्घ्य जल; गो—गौवों; वृषैः—तथा साँड़ों से।

जब जनकवंशी बहुलाश्व ने दूर से भगवान् कृष्ण को मुनियों समेत, जो यात्रा से कुछ कुछ थके थे, अपने घर की ओर आते देखा, तो उसने तुरन्त उनके लिए सम्मानित आसन लाये जाने की व्यवस्था की। जब वे सब सुखपूर्वक बैठ गये, तो बुद्धिमान राजा ने, जिसका हृदय प्रसन्नता से आप्लावित हो रहा था और जिसके नेत्र अश्रुओं से धूमिल हो रहे थे, उन सबों को नमन किया और गहन भक्ति के साथ उनके चरण पखारे। फिर इस प्रक्षालन-जल को, जो सारे संसार को शुद्ध कर सकती था, उन्होंने अपने सिर पर तथा अपने परिवार के सदस्यों के सिरों पर छिड़का। तत्पश्चात् उसने सुगन्धित चन्दन-लेप, फूल की मालाओं, सुन्दर वस्त्र तथा आभूषणों, अगुरु, दीपक, अर्घ्य तथा गौवों और साँड़ों की भेंट देते हुए, उन महानुभावों की पूजा की।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद टीका करते हैं, “विदेहराज बहुलाश्व अत्यन्त बुद्धिमान तथा पूर्णतया भद्र पुरुष था। श्रीभगवान् सहित इतने महापुरुषों को अपने घर में प्रत्यक्ष उपस्थित देखकर वह चकित था। उसे भलीभाँति ज्ञात था कि बद्धात्माएँ, विशेष रूप से सांसारिक कार्यों में संलग्न व्यक्ति शत प्रतिशत

शुद्ध नहीं हो सकते, जबकि भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्त सांसारिक कल्मष से परे होते हैं। अतएव जब उसने देखा कि भगवान् कृष्ण तथा समस्त महान् ऋषिगण उसके घर पर हैं, तो वह चकित हुआ और वह भगवान् कृष्ण को उनकी इस अहैतुकी कृपा के लिए धन्यवाद देने लगा।”

इस श्लोक में ईश्वर शब्द न केवल भगवान् का अपितु उनके साथ आए महामुनियों का भी द्योतक है। आचार्य श्रीधर स्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा इसकी पुष्टि की गई है।

वाचा मधुरया प्रीणन्नदमाहान्नतर्पितान् ।

पादावङ्कगतौ विष्णोः संस्पृशञ्छनकैर्मुदा ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

वाचा—वाणी से; मधुरया—मधुर, धीमी; प्रीणन्—प्रसन्न करने का प्रयास करते हुए; इदम्—यह; आह—कहा; अन्न—भोजन से; तर्पितान्—कृतकृत्य किये गये; पादौ—पाँवों को; अङ्क—अपनी गोद में; गतौ—स्थित; विष्णोः—भगवान् कृष्ण के; संस्पृशन्—दबाते हुए; शनकैः—धीरे धीरे; मुदा—सुखपूर्वक।

जब वे जी-भरकर भोजन कर चुके, तो उनको और प्रसन्न करने के लिए भगवान् विष्णु के चरणों को अपनी गोद में रखकर और उन्हें सुखपूर्वक दबाते हुए राजा धीरे धीरे तथा मृदुल वाणी में बोला।

श्रीबहुलाश्व उवाच

भवान्नि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ।

अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-बहुलाश्वः उवाच—श्री बहुलाश्व ने कहा; भवान्—आप; हि—निस्सन्देह; सर्व—समस्त; भूतानाम्—जीवों के; आत्मा—परमात्मा; साक्षी—गवाह; स्व-दृक्—आत्म-प्रकाशित; विभो—हे सर्वशक्तिमान; अथ—इस प्रकार; नः—हमको; त्वत्—तुम्हारे; पद-अम्भोजम्—चरणकमलों को; स्मरताम्—स्मरण करने वालों को; दर्शनम् गतः—दिख रहे हैं।

श्री बहुलाश्व ने कहा : हे सर्वशक्तिमान प्रभु, आप समस्त जीवों के आत्मा एवं उनके स्व-प्रकाशित साक्षी हैं और अब आप हम सबों को, जो निरन्तर आपके चरणकमलों का ध्यान करते हैं, अपना दर्शन दे रहे हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बहुलाश्व के आन्तरिक भावों को इस प्रकार प्रकट करते हैं: बहुलाश्व भगवान् कृष्ण का यशोगान समस्त जीवों के प्रेरक आत्मा तथा चेतना के रूप में यह सोच कर करता है कि उस जैसे जड़ में भी उनकी कृपा से भक्ति जागृत हो सकी है। वह समस्त शुभ तथा अशुभ कार्यों के साक्षी रूप में भगवान् की प्रशंसा करता है और विश्वास करता है कि उसने जो भी किंचित

भक्ति की है, वह भगवान् को अवश्य ही स्मरण होगी। वह उन्हें स्व-प्रकाशित, किसी बाह्य साधन से कभी भी प्रकाशित या सूचित होने की आवश्यकता न रखने वाले तथा बहुलाश्र्व द्वारा उनका दर्शन पाने की चिर गुप्त अभिलाषा से अवगत बतलाता है।

स्ववचस्तद्वतं कर्तुमस्मद्गुचरो भवान् ।

यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तः श्रीरजः प्रियः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

स्व—अपना; वचः—कथन; तत्—उस; ऋतम्—सत्य; कर्तुम्—बनाने के लिए; अस्मत्—हमारी; इक्—आँखों को; गोचरः—दिखने वाला; भवान्—आप; यत्—जो; आत्थ—कहा; एक-अन्त—एक ही उद्देश्य से; भक्तात्—भक्त की अपेक्षा; मे—मेरा; न—नहीं; अनन्तः—भगवान् अनन्त; श्रीः—श्री देवी; अजः—अजन्मा ब्रह्मा; प्रियः—प्रिय।

आपने कहा है, “मुझे अपने अनन्य भक्त की तुलना में न तो अनन्त, देवी श्री या न ही अजन्मा ब्रह्मा अधिक प्रिय हैं।” अपने ही शब्दों को सत्य सिद्ध करने के लिए, अब आपने हमारे नेत्रों के समक्ष अपने को प्रकट किया है।

को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवंविद्विसृजेत्पुमान् ।

निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

कः—कौन; नु—तनिक भी; त्वत्—तुम्हारे; चरण-अम्भोजम्—चरणकमलों को; एवम्—इस तरह; वित्—जानते हुए; विसृजेत्—त्याग देंगे; पुमान्—व्यक्ति को; निष्किञ्चनानाम्—निष्काम व्यक्तियों के लिए; शान्तानाम्—शान्त; मुनीनाम्—मुनियों के लिए; यः—जो; त्वम्—तुम; आत्म—स्वयं को; दः—देने वाले।

ऐसा कौन पुरुष है, जो इस सत्य को जानते हुए कभी आपके चरणकमलों का परित्याग करेगा, जब आप उन शान्त मुनियों को अपने आप तक को दे डालने के लिए उद्यत रहते हैं, जो किसी भी वस्तु को अपनी नहीं कहते?

योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ।

यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; अवतीर्य—अवतरित होकर; यदोः—यदु के; वंशे—वंश में; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; संसरताम्—जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे हुए; इह—इस संसार में; यशः—आपका यश; वितेने—प्रसार कर चुका है; तत्—उस (जगत) के; शान्त्यै—शमन के लिए; त्रै-लोक्य—तीनों लोकों के; वृजिन—पाप; अपहम्—दूर करने वाला।

आपने यदुवंश में प्रकट होकर तीनों लोकों के समस्त पापों को दूर कर सकने में समर्थ अपने यश का विस्तार, जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे हुआ का उद्धार करने के लिए ही किया है।

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—तुमको; भगवते—भगवान्; कृष्णाय—कृष्ण को; अकुण्ठ—विस्तृत; मेधसे—बुद्धि वाले;
नारायणाय ऋषये—ऋषि नर-नारायण को; सु-शान्तम्—पूर्णतया शान्त; तपः—तपस्या में; ईयुषे—संलग्न।

हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण, आपको नमस्कार है, जिनकी बुद्धि सदैव ही असीम है।

ऋषि नर-नारायण को नमस्कार है, जो पूर्ण शान्ति में रह कर सदैव तपस्या करते रहते हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि राजा ने भगवान् कृष्ण की स्तुति इसलिए की, जिससे वे कुछ दिन उसके घर पर रह जायें। राजा ने सोचा, “चूँकि भगवान् के संसर्ग से भ्रान्ति तथा सन्देह दूर हो सकते हैं, अतः मेरे घर पर कृष्ण की उपस्थिति से मेरी बुद्धि सुदृढ़ होगी जिससे मैं भौतिक इच्छाओं के घात-प्रतिघात सह सकूँगा। नर-नारायण ऋषि के अपने अंशरूप में भगवान् भारतभूमि के मंगल हेतु सदैव बदरिकाश्रम में निवास करते हैं, अतएव वे कुछ दिनों तक मिथिला में रह कर इस भूमि के लिए भी सौभाग्य उत्पन्न कर सकेंगे। चूँकि कृष्ण का लुकाव शान्ति तथा सादगी के प्रति है, अतएव उन्हें द्वारका के अत्यधिक ऐश्वर्य की अपेक्षा मेरा सादा घर अवश्य पसन्द आयेगा।”

दिनानि कतिचिद्भूमन्गृहान्नो निवस द्विजैः ।
समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

दिनानि—दिन; कतिचित्—कुछ; भूमन्—हे सर्वव्यापी; गृहान्—घर में; नः—हमारे; निवस—कृपया निवास करें; द्विजैः—
ब्राह्मणों द्वारा; समेतः—सम्मिलित; पाद—अपने चरणों की; रजसा—धूल से; पुनीहि—पवित्र करें; इदम्—इस; निमेः—राजा
निमि के; कुलम्—वंश को।

हे सर्वव्यापी, कृपया इन ब्राह्मणों समेत मेरे घर में कुछ दिन ठहरें और अपने चरणों की

धूलि से इस निमिवंश को पवित्र बनायें।

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः ।
उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उपामन्त्रितः—आमंत्रित; राज्ञा—राजा द्वारा; भगवान्—भगवान् ने; लोक—पूरे संसार के; भावनः—
पालनकर्ता; उवास—निवास किया; कुर्वन्—उत्पन्न करते हुए; कल्याणम्—सौभाग्य; मिथिला—मिथिला नगरी के; नर—
मनुष्यों; योषिताम्—तथा स्त्रियों के।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : राजा द्वारा इस तरह आमंत्रित किये जाने पर जगत के पालनकर्ता भगवान् ने मिथिला के नर-नारियों को सौभाग्य प्रदान करने हेतु कुछ समय तक ठहरने की सहमति दे दी ।

श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहाञ्जनको यथा ।
नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

श्रुतदेवः— श्रुतदेव; अच्युतम्— भगवान् कृष्ण को; प्राप्तम्— पाया हुआ; स्व-गृहान्— अपने घर में; जनकः— बहुलाश्व ने; यथा— जिस तरह; नत्वा— नमस्कार करके; मुनीन्— मुनियों को; सु— अत्यधिक; संहृष्टः— प्रसन्न; धुन्वन्— हिलाते हुए; वासः— अपना वस्त्र; ननर्त ह— नाचने लगा ।

श्रुतदेव ने अपने घर में भगवान् अच्युत का उतने ही उत्साह के साथ स्वागत किया, जैसा कि राजा बहुलाश्व ने प्रदर्शित किया था। भगवान् तथा मुनियों को नमस्कार करके श्रुतदेव अपना दुशाला हिला-हिला कर परम हर्ष से नाचने लगा ।

तृणपीठबृषीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः ।
स्वागतेनाभिनन्द्याङ्घ्रीन्सभार्योऽवनिजे मुदा ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तृण— घास के; पीठ— आसनों पर; बृषीषु— तथा दर्भ की बनी चटाइयों पर; एतान्— उन्हें; आनीतेषु— लाये गये; उपवेश्य— बैठाकर; सः— वह; स्व-आगतेन— स्वागत के शब्दों से; अभिनन्द्य— अभिनन्दन करके; अङ्घ्रीन्— चरणों को; स-भार्यः— अपनी पत्नी सहित; अवनिजे— धोया; मुदा— प्रसन्नतापूर्वक ।

घास तथा दर्भ तृण से बनी चटाइयाँ लाकर तथा अपने अतिथियों को उन पर बैठाकर, उसने स्वागत के शब्दों द्वारा उनका सत्कार किया। तब उसने तथा उसकी पत्नी ने बड़ी ही प्रसन्नता के साथ उनके चरण पखारे ।

तात्पर्य : इस सामान्य स्वागत के लिए भी श्रुतदेव को अपने पड़ोस में जाकर अतिरिक्त चटाइयाँ उधार लानी पड़ीं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने यह भीतरी बात बतलाई है ।

तदम्भसा महाभाग आत्मानं सगृहान्वयम् ।
स्नापयां चक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तत्—उस; अम्भसा—जल से; महा-भागः—अत्यन्त पवित्र; आत्मानम्—स्वयं को; स—सहित; गृह—अपने घर; अन्वयम्—
तथा अपने परिवार; स्नापयाम् चक्रे—स्नान किया; उद्धर्षः—अत्यधिक हर्षित; लब्ध—प्राप्त की हुई; सर्व—समस्त; मनः-
रथः—इच्छाएँ।

उस चरणोदक को महाभाग श्रुतदेव ने अपने, अपने घर तथा अपने परिवार वालों पर जी भर कर छिड़का। अति हर्षित होकर उसने अनुभव किया कि अब उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गई हैं।

फलार्हणोशीरशिवामृताम्बुभि-

मृदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुयैः ।

आराधयामास यथोपपन्नया

सपर्यया सत्त्वविवर्धनान्धसा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

फल—फलों की; अर्हण—भेंट से; उशीर—खस से; शिव—शुद्ध; अमृत—अमृत जैसे मीठे; अम्बुभिः—तथा जल से; मृदा—
मिट्टी; सुरभ्या—सुगंधित; तुलसी—तुलसी दलों; कुश—कुश घास; अम्बुजैः—तथा कमल के फूलों से; आराधयाम् आस—
उसने उनकी पूजा की; यथा—जिस तरह; उपपन्नया—प्राप्त किया जा सके; सपर्यया—पूजा सामग्री सहित; सत्त्व—सतोगुण;
विवर्धन—वृद्धि; अन्धसा—भोजन से।

उसने सहज उपलब्ध होने वाली शुभ सामग्री यथा फल, उशीर, शुद्ध अमृत तुल्य जल, सुगंधित मिट्टी, तुलसी दल, कुश तृण तथा कमल के फूल अर्पित करते हुए उनकी पूजा की। तब उसने उन्हें वह भोजन परोसा, जो सतोगुण को बढ़ाता है।

स तर्कयामास कुतो ममान्वभूत्

गृहान्धकूपे पतितस्य सङ्गमः ।

यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः

कृष्णो न चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; तर्कयाम् आस—समझने की कोशिश की; कुतः—किस कारण से; मम—मेरे; अनु—निस्सन्देह; अभूत्—हुआ है;
गृह—घर रूपी; अन्ध—अंधे; कूपे—कुएँ में; पतितस्य—गिरे हुए; सङ्गमः—संगति; यः—जो; सर्व—सभी; तीर्थ—तीर्थस्थानों
के; आस्पद—शरण स्वरूप; पाद—जिसके पाँवों की; रेणुभिः—धूलि से; कृष्णो—कृष्ण से; च—भी; अस्य—इसके;
आत्म—स्वयं का; निकेत—घर स्वरूप; भू-सुरैः—ब्राह्मणों से।

वह आश्चर्य करने लगा कि गृहस्थ जीवन के अंध कूप में गिरा हुआ, मैं भगवान् कृष्ण से भेंट करने में कैसे समर्थ हो सका? और मुझे कैसे इन महान् ब्राह्मणों से मिलने दिया गया, जो अपने हृदयों में सदैव भगवान् को धारण किये रहते हैं? निस्सन्देह उनके चरणों की धूलि समस्त तीर्थस्थानों के आश्रय रूप है।

सूपविष्टान्कृतातिथ्याश्रुतदेव उपस्थितः ।

सभार्यस्वजनापत्य उवाचाद्भयभिमर्शनः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

सु-उपविष्टान्—सुखपूर्वक बैठे हुए; कृत—की गई; आतिथ्यान्—मेहमानगिरी, सत्कार; श्रुतदेवः—श्रुतदेव; उपस्थितः—उनके पास बैठा हुआ; स-भार्य—अपनी पत्नी के साथ; स्व-जन—सम्बन्धीजन; अपत्यः—तथा सन्तानें; उवाच—बोला; अङ्घ्रि—(भगवान् कृष्ण के) पाँव; अभिमर्शनः—दबाते हुए।

जब उसके अतिथि समुचित सम्मान प्राप्त करके सुखपूर्वक बैठ गये, तो श्रुतदेव उनके निकट गया और अपनी पत्नी, बच्चों तथा अन्य आश्रितों समेत उनके समीप बैठ गया। तत्पश्चात् भगवान् के चरणों को दबाते हुए, उसने कृष्ण तथा मुनियों को सम्बोधित किया।

श्रुतदेव उवाच

नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपुरुषः ।

यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

श्रुतदेवः उवाच—श्रुतदेव ने कहा; न—नहीं; अद्य—आज; नः—हमारे द्वारा; दर्शनम्—दर्शन; प्राप्तः—प्राप्त किया हुआ; परम्—एकमात्र; परम—सर्वोच्च; पुरुषः—पुरुष; यर्हि—जब; इदम्—यह (ब्रह्माण्ड); शक्तिभिः—अपनी शक्तियों सहित; सृष्ट्वा—उत्पन्न करके; प्रविष्टः—प्रविष्ट; हि—निस्सन्देह; आत्म—अपनी; सत्तया—सत्ता से।

श्रुतदेव ने कहा : ऐसा नहीं है कि हमने केवल आज ही परम पुरुष का दर्शन किया है, क्योंकि जब से उन्होंने अपनी शक्तियों से इस ब्रह्माण्ड की रचना की है और अपने दिव्य रूप से उसमें प्रविष्ट हुए हैं, तब से हम उनका सान्निध्य प्राप्त करते रहे हैं।

यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ।

सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; शयानः—सोते हुए; पुरुषः—व्यक्ति; मनसा—मस्तिष्क से; एव—केवल; आत्म—अपना; मायया—कल्पना से; सृष्ट्वा—सृजन करके; लोकम्—जगत; परम्—पृथक्; स्वाप्नम्—स्वप्न; अनुविश्य—प्रवेश करके; अवभासते—प्रकट होता है।

भगवान् उस सोये हुए व्यक्ति की तरह हैं, जो अपनी कल्पना में पृथक् जगत का निर्माण करता है और तब अपने ही स्वप्न में प्रवेश करता है तथा उसके भीतर अपने को देखता है।

तात्पर्य : सोया हुआ व्यक्ति अपने स्वप्न के मोह में एक काल्पनिक जगत की सृष्टि करता है, जिसमें उसकी कल्पनाओं से जनित तमाम बसे हुए शहर होते हैं। कुछ इसी तरह से भगवान् विराट

ब्रह्माण्ड को प्रकट करते हैं। निस्सन्देह, भगवान् के लिए यह सृष्टि मायामयी (भ्रामक) नहीं है, किन्तु उनके लिए है, जो उनकी मायाशक्ति के अधीन होते हैं। भगवान् की सेवा के रूप में माया बद्धजीवों को अपने असार नश्वर स्वरूप को असली मानने को भ्रमित करती है।

शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाभिवन्दताम् ।
णृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

शृण्वताम्—सुनने वालों के लिए; गदताम्—बोलते हुए; शश्वत्—निरन्तर; अर्चताम्—पूजा करते हुए; त्वा—तुम; अभिवन्दताम्—प्रशंसा करते हुए; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; संवदताम्—बातें करते हुए; अन्तः—भीतर; हृदि—हृदय में; भासि—तुम प्रकट होते हो; अमल—निर्मल; आत्मनाम्—मन वालों के लिए।

आप उन शुद्ध चेतना वाले मनुष्यों के हृदयों के भीतर अपने को प्रकट करते हैं, जो निरन्तर आपके विषय में सुनते हैं, आपका कीर्तन करते हैं, आपकी पूजा करते हैं, आपका गुणगान करते हैं और आपके ही विषय में एक-दूसरे से चर्चायें करते हैं।

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ।
आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

हृदि—हृदय में; स्थः—स्थित; अपि—यद्यपि; अति—अत्यन्त; दूर—स्थः—बहुत दूर; कर्म—भौतिक कार्यों द्वारा; विक्षिप्त—विचलित; चेतसाम्—मन वालों के लिए; आत्म—अपनी; शक्तिभिः—शक्तियों से; अग्राह्यः—ग्रहण न किया जा सकने वाला; अपि—यद्यपि; अन्ति—निकट; उपेत—अनुभूति किया हुआ; गुण—आपके गुण; आत्मनाम्—हृदय वालों द्वारा।

किन्तु हृदय के भीतर वास करते हुए भी आप उनसे बहुत दूर रहते हैं, जिनके मन भौतिक कार्यों में उलझने से विचलित रहते हैं। दरअसल कोई भी आपको भौतिक शक्तियों द्वारा पकड़ नहीं सकता, क्योंकि आप केवल उन लोगों के हृदयों में प्रकट होते हैं, जिन्होंने आपके दिव्य गुणों की प्रशंसा करनी सीख ली है।

तात्पर्य : सर्व-दयालु भगवान् जन-जन के हृदय में हैं। किन्तु उन्हें हृदयों में देख पाना तभी सम्भव है, जब किसी का हृदय पूर्णतया शुद्ध हो। भौतिकतावादी यह माँग पेश कर सकते हैं कि उनकी अनुभवसिद्ध खोजों के फलस्वरूप ईश्वर उनके समक्ष दिखकर अपने अस्तित्व को सिद्ध करे, किन्तु ईश्वर को ऐसी धृष्टता का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। जैसाकि भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.२५) में कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

“मैं कभी भी मूर्ख तथा अज्ञानी के समक्ष प्रकट नहीं होता। उनके लिए मैं अपनी अन्तरंगा शक्ति से ढका रहता हूँ, इसलिए वे यह नहीं जान पाते कि मैं अजन्मा तथा अव्यय हूँ।”

नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने
 अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ।
 सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे
 स्वमाययासंवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; अस्तु—हो; ते—तुमको; अध्यात्म—परम सत्य; विदाम्—जानने वालों के लिए; पर-आत्मने—परमात्मा को; अनात्मने—बद्ध जीवात्मा को; स्व-आत्म—(काल रूप में) आपसे; विभक्त—देने वाला; मृत्यवे—मृत्यु को; स-कारण—कारणयुक्त; अकारण—कारणरहित; लिङ्गम्—स्वरूप (ब्रह्माण्ड तथा आपके आदि स्वरूप); ईयुषे—धारण करने वाले; स्व-मायया—अपनी योगशक्ति से; असंवृत—खुला; रुद्ध—तथा रुकी; दृष्टये—दृष्टि।

मैं आपको नमस्कार करता हूँ। परम सत्य को जानने वालों द्वारा आप परमात्मा के रूप में अनुभव किये जाते हैं, जबकि काल रूप में आप विस्मरणशील जीवों के लिए मृत्यु स्वरूप हैं। आप अपने अहैतुक आध्यात्मिक रूप में तथा इस ब्रह्माण्ड के सृजित रूप में प्रकट होते हैं। इस तरह आप एक ही समय अपने भक्तों की आँखें खोलते हैं और अभक्तों की दृष्टि को बाधित करते हैं।

तात्पर्य : जब भगवान् अपने नित्य आध्यात्मिक रूप में अपने भक्तों के समक्ष प्रकट होते हैं, तो उनकी आँखें “खुल” जाती हैं—अर्थात् उनका सारा भ्रम जाता रहता है और वे परम सत्य भगवान् के सुन्दर दृश्य का पान करते हैं। दूसरी ओर, अभक्तों के लिए भगवान् भौतिक प्रकृति अर्थात् अपने विराट रूप में “प्रकट” होते हैं और इस तरह वे उनकी दृष्टि पर पर्दा डाल देते हैं, जिससे उनका आध्यात्मिक साकार रूप उनसे ओझल हो जाता है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की अन्य व्याख्या दी है, जो अनात्मा शब्द के रूप अनात्मने शब्द के वैकल्पिक अर्थ पर आधारित है। “विभिन्न श्रेणियों के लोग परम सत्य को विभिन्न प्रकारों से जानते हैं। शान्त रस में स्थित भक्तगण ब्रह्म का ध्यान दैवी साकार रूप (आत्मा या श्रीविग्रह) में करते हैं, जो भौतिक मोह के सारे पक्षों को लाँघ जाता है। निर्विशेषवादी ज्ञानीजन उन्हें निराकार (अनात्मा)

रूप में मानते हैं और ईर्ष्यालु असुर उन्हें मृत्यु रूप में देखते हैं।”

स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवाम हे ।

एतदन्तो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—तुम; शाधि—आज्ञा दें; स्व—अपने; भृत्यान्—दासों को; नः—हम; किम्—क्या; देव—हे प्रभु; करवाम—हमें करना चाहिए; हे—ओह; एतत्—यह; अन्तः—इसके अन्त के रूप में; नृणाम्—मनुष्यों के; क्लेशः—क्लेश; यत्—जो; भवान्—आपकी; अक्षि—आँखों को; गो-चरः—दृश्य।

हे प्रभु, आप ही वह परमात्मा हैं और हम आपके दास हैं। हम आपकी किस तरह सेवा करें ?

हे प्रभु, आपके दर्शन मात्र से मनुष्य-जीवन के सारे क्लेशों का अन्त हो जाता है।

श्रीशुक उवाच

तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा ।

गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; तत्—उस (श्रुतदेव) के द्वारा; उक्तम्—कहा गया; इति—इस प्रकार; उपाकर्ण्य—सुन कर; भगवान्—भगवान्; प्रणत—शरणागत के; आर्ति—कष्ट का; हा—विनाश करने वाला; गृहीत्वा—पकड़ कर; पाणिना—अपने हाथ से; पाणिम्—उसका हाथ; प्रहसन्—खिलखिलाकर हँसते हुए; तम्—उससे; उवाच ह—कहा।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : श्रुतदेव को ये शब्द कहते सुन कर, शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाले भगवान् ने श्रुतदेव के हाथ को अपने हाथ में ले लिया और हँसते हुए, उससे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : आचार्य विश्वनाथ की टीका है कि भगवान् मैत्री के संकेत रूप में श्रुतदेव का हाथ पकड़ कर इसलिए हँसे, क्योंकि वे उसे बतलाना चाहते थे कि “ठीक, तुम मेरे विषय में सही सही जानते हो और मैं भी तुम्हारे विषय में सबकुछ जानता हूँ। अतएव अब मैं तुमसे कुछ विशेष बात कहूँगा।”

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय सम्प्राप्तान्विद्धमून्मुनीन् ।

सञ्चरन्ति मया लोकान्पुनन्तः पादरेणुभिः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; ते—तुम्हारा; अनुग्रह—आशीर्वाद देने के; अर्थाय—हेतु; सम्प्राप्तान्—आये हुए; विद्धि—जानो; अमून्—इन; मुनीन्—मुनियों को; सञ्चरन्ति—भ्रमण करते हैं; मया—मेरे साथ साथ; लोकान्—सारे जगत् को; पुनन्तः—शुद्ध करते हुए; पाद—अपने पैरों की; रेणुभिः—धूल से।

भगवान् ने कहा : हे ब्राह्मण, तुम यह जान लो कि ये महान् ऋषिगण यहाँ तुम्हें आशीर्वाद

देने ही आये हैं। ये मेरे साथ साथ सारे जगतों में भ्रमण करते हैं और अपने चरणों की धूल से, उन्हें पवित्र करते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि भगवान् कृष्ण ने सोचा कि श्रुतदेव ने मेरा तो बहुत आदर किया, किन्तु इन मुनियों का उतना आदर नहीं किया, इसलिए उन्होंने ब्राह्मण का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया।

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शानार्चनैः ।

शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

देवाः—मन्दिर के अर्चाविग्रह; क्षेत्राणि—तीर्थस्थल; तीर्थानि—तथा पवित्र नदियाँ; दर्शन—दर्शन करने से; स्पर्शन—स्पर्श से; अर्चनैः—तथा पूजा करने से; शनैः—धीरे धीरे; पुनन्ति—पवित्र करते हैं; कालेन—समय से; तत् अपि—वे ही; अर्हत्-तम—सर्वाधिक पूज्यों (ब्राह्मणों) की; ईक्षया—चितवन से।

मनुष्य मन्दिर के अर्चाविग्रहों, तीर्थस्थलों तथा पवित्र नदियों के दर्शन, स्पर्श तथा पूजन से धीरे धीरे शुद्ध बन सकता है। किन्तु महान् मुनियों की कृपादृष्टि प्राप्त करने मात्र से, उसे तत्काल वही फल प्राप्त हो सकता है।

तात्पर्य : उच्च कोटि के वैष्णव ब्राह्मण एकान्तवास करने तथा अपनी सिद्धि में ही एकाग्र रहने की अपेक्षा भगवान् की भक्ति का आशीर्वाद बाँटने में अपना जीवन अर्पित कर देते हैं। राजा प्राचीनबर्हि के पुत्रों के शब्दों में—

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ।

भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥

“हे प्रभु! आपके निजी संगी अर्थात् आपके भक्त सारे विश्व में पावन तीर्थस्थानों तक को पवित्र करने के लिए भ्रमण करते रहते हैं। क्या जो लोग भवसागर से भयभीत हैं उन्हें ऐसा कार्य रुचिकर नहीं है ? (भागवत ४.३०.३७) तथा प्रह्लाद महाराज कहते हैं—

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा

मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।

नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको

नान्यं त्वदस्य शरणम् भ्रमतोऽनुपश्ये ॥

“हे नृसिंह देव! मैं देखता हूँ कि दरअसल सन्त-पुरुष तो अनेक हैं, किन्तु वे अपने ही मोक्ष में रुचि रखते हैं। वे बड़े बड़े नगरों की परवाह न करके हिमालय या किसी जंगल में मौन व्रत के साथ ध्यान करने के लिए जाते हैं। वे अन्यो का उद्धार करने में तनिक भी रुचि नहीं रखते। किन्तु, जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं इन बेचारे मूर्खों तथा मूढ़ों को छोड़ कर अकेले मोक्ष नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि कृष्ण-भावना के बिना, आपके चरणकमलों की शरण लिए बिना कोई सुखी नहीं रह सकता। अतएव मैं उन सबों को आपके चरणकमलों की शरण में वापस लाना चाहता हूँ।” (भागवत ७.९.४४)

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषाम्प्राणिनामिह ।

तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणः—ब्राह्मण; जन्मना—जन्म से; श्रेयान्—सर्वोत्तम; सर्वेषाम्—सभी; प्राणिनाम्—जीवों में; इह—इस जगत में; तपसा—अपनी तपस्या से; विद्यया—अपनी विद्या से; तुष्ट्या—तथा अपने संतोष से; किम् उ—तब और क्या; मत्—मुझ पर; कलया—प्रेमपूर्ण ध्यान से; युतः—युक्त।

ब्राह्मण अपने जन्म से ही इस जगत में समस्त जीवों में श्रेष्ठ है, किन्तु वह तब और भी उच्चस्थ बन जाता है, जब वह तपस्या, विद्या तथा आत्म-संतोष से युक्त होता है। यदि मेरे प्रति उसकी भक्ति हो, तो फिर कहना ही क्या है।

न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ।

सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ब्राह्मणात्—ब्राह्मण की अपेक्षा; मे—मुझको; दयितम्—अधिक प्रिय; रूपम्—स्वरूप; एतत्—यह; चतुः-भुजम्—चार भुजाओं वाला; सर्व—समस्त; वेद—वेदों से; मयः—युक्त; विप्रः—विद्वान ब्राह्मण; सर्व—समस्त; देव—देवताओं से; मयः—युक्त; हि—निस्सन्देह; अहम्—मैं।

यहाँ तक कि मुझे ब्राह्मणों की तुलना में अपना चतुर्भुजी रूप अधिक प्रिय नहीं है। एक विद्वान ब्राह्मण में सारे वेद उसी तरह रहते हैं, जिस तरह मेरे भीतर सारे देवता रहते हैं।

तात्पर्य : न्यायशास्त्र से पता चलता है कि किसी वस्तु का ज्ञान (प्रमेय) उसे जानने के वैध साधनों (प्रमाण) पर निर्भर करता है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को केवल वेदों के द्वारा जाना जा सकता है, इसलिए भगवान् को स्वयं को प्रकट करने के लिए उन ब्राह्मण मुनियों पर निर्भर रहना होता है, जो साक्षात् वेदस्वरूप हैं। यद्यपि भगवान् कृष्ण समस्त देवताओं तथा नारायण के विष्णु-तत्त्व अंशों से

समन्वित हैं, तो भी वे अपने को ब्राह्मणों का कृतज्ञ मानते हैं।

दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः ।
गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

दुष्प्रज्ञाः—विकृत बुद्धि वाले; अविदित्वा—न समझ कर; एवम्—इस प्रकार; अवजानन्ति—उपेक्षा करते हैं; असूयवः—तथा ईर्ष्यापूर्ण व्यवहार करते हैं; गुरुम्—अपने गुरु के प्रति; माम्—तथा मुझको; विप्रम्—विद्वान ब्राह्मण को; आत्मानम्—अपने आपको; अर्चा-आदर—भगवान् के अर्चाविग्रह में; इज्य—पूज्य के रूप में; दृष्टयः—जिनकी दृष्टि।

इस सत्य से अनजान मूर्ख लोग उस विद्वान ब्राह्मण की उपेक्षा करते हैं और ईर्ष्यावश अपमान करते हैं, जो मुझसे अभिन्न होने के कारण, उनका आत्मा तथा गुरु होता है। वे मेरे अर्चाविग्रह स्वरूप जैसे स्पष्ट दैवी प्राकट्यों को ही, एकमात्र पूज्य स्वरूप मानते हैं।

चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ।
मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

चर—चेतन; अचरम्—तथा जड़; इदम्—इस; विश्वम्—जगत को; भावाः—तात्त्विक कोटियाँ; ये—जो; च—तथा; अस्य—इसका; हेतवः—स्रोत; मत्—मेरे; रूपाणि—स्वरूप; इति—ऐसा विचार; चेतसि—मन के भीतर; आधत्ते—रखता है; विप्रः—ब्राह्मण; मत्—मेरा; ईक्षया—अपनी अनुभूति द्वारा।

मेरा साक्षात्कार प्राप्त किये होने से, ब्राह्मण इस ज्ञान में सुस्थिर रहता है कि इस ब्रह्माण्ड की सारी जड़ तथा चेतन वस्तुएँ एवं इसकी सृष्टि के मूल तत्त्व भी, मुझसे ही विस्तारित हुए प्रकट-रूप हैं।

तस्माद्ब्रह्म ऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयार्चय ।
एवं चेदचितोऽस्म्यद्वा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; ब्रह्म-ऋषीन्—ब्रह्मर्षियों को; एतान्—इन; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण (श्रुतदेव); मत्—(जैसाकि तुम रखते हो) मेरे लिए; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; अर्चय—पूजा करो; एवम्—इस प्रकार; चेत्—यदि (तुम करोगे); अचितः—पूजित; अस्मि—होऊंगा; अद्वा—प्रत्यक्ष; न—नहीं; अन्यथा—अन्यथा; भूरि—विस्तृत; भूतिभिः—धन से।

अतः हे ब्राह्मण, तुम्हें चाहिए कि इन ब्रह्मर्षियों की पूजा उसी श्रद्धा से करो, जो तुम्हें मुझमें है। यदि तुम ऐसा करते हो, तो तुम मेरी प्रत्यक्ष पूजा करोगे, जिसे तुम प्रचुर धन अर्पित करके करके भी नहीं कर सकते।

श्रीशुक उवाच

स इत्थं प्रभुनादिष्टः सहकृष्णान् द्विजोत्तमान् ।
आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सः—वह (श्रुतदेव); इत्थम्—इस प्रकार से; प्रभुना—अपने स्वामी द्वारा; आदिष्टः—आदेश दिया जाकर; सह—साथ में; कृष्णान्—भगवान् कृष्ण को; द्विज—ब्राह्मणों को; उत्तमान्—श्रेष्ठ; आराध्य—पूजा द्वारा; एक-आत्म—एकान्त मन से; भावेन—भक्ति से; मैथिलः—मिथिला का राजा; च—भी; आप—प्राप्त किया; सत्—दिव्य; गतिम्—चरम गन्तव्य ।

श्रीशुकदेव ने कहा : अपने प्रभु से इस तरह आदेश पाकर श्रुतदेव ने एकात्म भाव से श्रीकृष्ण की तथा उनके साथ आये सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा की । राजा बहुलाश्व ने भी ऐसा ही किया । इस तरह श्रुतदेव तथा राजा दोनों ही को चरम दिव्य गन्तव्य प्राप्त हुआ ।

एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् ।
उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; स्व—अपने; भक्तयोः—दो भक्तों से; राजन्—हे राजा (परीक्षित); भगवान्—भगवान्; भक्त—अपने भक्तों के प्रति; भक्ति-मन्—भक्ति में लगा; उषित्वा—ठहर कर; आदिश्य—शिक्षा देकर; सत्—शुद्ध सन्तों के; मार्गम्—पथ पर; पुनः—फिर; द्वारवतीम्—द्वारका; अगात्—चले गए ।

हे राजन्, इस तरह अपने भक्तों के प्रति अनुरक्त भगवान् अपने दो महान् भक्तों, श्रुतदेव तथा बहुलाश्व के साथ कुछ समय तक उन्हें पूर्ण सन्तों के आचरण की शिक्षा देते हुए वही रहते रहे । तब भगवान् द्वारका लौट गये ।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद इस लीला का वर्णन करते हुए इस तरह समापन करते हैं: “हम इस घटना से यह शिक्षा पाते हैं कि भगवान् ने राजा बहुलाश्व तथा ब्राह्मण श्रुतदेव का एक ही स्तर पर स्वागत किया, क्योंकि दोनों ही विशुद्ध भक्त थे। भगवान् द्वारा पहचाने जाने के लिए यही वास्तविक योग्यता है। क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर झूठा गर्व करना आज के युग का प्रचलन बन गया है। अतएव हम पाते हैं कि जन्म के अतिरिक्त अन्य किसी योग्यता के न होते हुए लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य होने का दावा करते हैं, किन्तु जैसाकि शास्त्रों में कहा गया है कलौ शूद्रसम्भवः—इस कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति शूद्र पैदा होता है। इसका कारण संस्कार नामक शुद्धिकरण की विधियों का निष्पादन नहीं होना है, जिनका शुभारम्भ माता के गर्भधारण से होता है तथा जो व्यक्ति के मृत्युपर्यन्त चलते रहते हैं। किसी भी व्यक्ति को जन्मजात अधिकार के आधार पर किसी विशेष

वर्ण, विशेष रूप से उच्च वर्ण जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वर्ण के सदस्य के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। यदि गर्भाधान संस्कार द्वारा किसी का शुद्धिकरण नहीं किया जाता, तो उसे तत्काल ही शूद्रों में वर्गीकृत किया जाता है, क्योंकि केवल शूद्र ही यह शुद्धिकरण नहीं करते। कृष्णभावनामृत की शुद्धिकरण प्रक्रिया से रहित ऐन्द्रिय मैथुनिक जीवन शूद्रों अथवा पशुओं की गर्भाधान प्रक्रिया मात्र है। किन्तु कृष्णभावनामृत सर्वोच्च सिद्धि है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति वैष्णव पद को पा सकता है। इसमें समस्त ब्राह्मणोचित योग्यताओं से युक्त होना भी सम्मिलित है। वैष्णवों को ऐसी शिक्षा दी जाती है, जिससे वे चारों प्रकार के पापकर्मों से मुक्त हो सकें। ये चार पापकर्म हैं— अवैध यौन, मादक पदार्थों का सेवन, जुआ खेलना तथा मांसाहार। इन प्रारम्भिक योग्यताओं के बिना कोई भी ब्राह्मणत्व के स्तर पर नहीं रह सकता तथा योग्य ब्राह्मण बने बिना, वह शुद्ध भक्त नहीं बन सकता।”

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “अर्जुन द्वारा सुभद्रा-हरण तथा कृष्ण द्वारा अपने भक्तों को आशीर्वाद दिया जाना” नामक छियासिवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।